IJCRM
International Journal of Contemporary Research In Multidisciplinary

Review Article

इक्कीसवीं सदी के उपन्यास: कथानक परिवर्तन का एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

Usha Kumari [1*], Dr. Ankit Narwal [2]
[1] Research Scholar, IEC University Baddi, Himachal Pradesh, India
[2] Research Supervisor, IEC University Baddi, Himachal Pradesh, India

Corresponding Author: * Usha Kumari

DOI: https://doi.org/10.5281/zenodo.17228023

सारांश

उपन्यास को अक्सर आधुनिक युग का महाकाव्य कहा जाता है क्योंकि यह अतीत, वर्तमान और भविष्य को साथ में लेता है। यह पूरे जीवन को एक महाकाव्य की तरह समेट सकता है। आधुनिक उपन्यासों से उम्मीद है कि वे समाज की छोटी-बड़ी सभी जटिलताओं को दिखाएँ। ये परिप्रेक्ष्य को वैश्विक बनाने की कोशिश करते हैं, ताकि सचाई का सही चित्र उभर सके। आज, लेखक हमारी दुनिया को हमारी नजरों से देख कर दिखाने का काम करते हैं। वे न केवल सोच से जुड़े होते हैं, बल्कि महसूस कर भी सक्रिय भागीदारी कर रहे हैं। 21वीं सदी के हिंदी लेखकों को इस महाकाव्यात्मक लक्ष्य की पूरी समझ है। उनके उपन्यास पुराने आदर्शों से बाहर निकल चुके हैं। वे अब असली दुनिया की सच्चाइयों से जुड़ते हैं, उन्हें समझते हैं और सबके साथ साझा करते हैं। वे की कहानियाँ में अब सामान्य लोग ही मुख्य हैं, न कि आदर्श कहानियां के नायक। हाल के वर्षों में, उपन्यास का ध्यान पुराने विषयों से हटकर नई जगह पर आ गया है। अब वे उन लोगों, मुद्दों और समूहों पर ध्यान देते हैं, जो पहले नजरअंदाज किए जाते थे। ये समूह या तो दिखाए नहीं जाते थे या फिर मौजूद होने के बावजूद छिपाए जाते थे। समय के साथ, ये लोग और मुद्दे सक्रिय होकर अपना स्थान बनाने लगे हैं। वे अपनी इज्ज़त और आवाज़ मजबूत कर रहे हैं। इससे कविता और सोच में बड़ा बदलाव आया है। अब मान्यताओं को बहुलवादी सोच में बदला जा रहा है। कहानियों की प्राथमिकताएं बदल रही हैं और नए नजरिए सामने आ रहे हैं।

Manuscript Information

- **ISSN No:** 2583-7397
- **Received:** 10-08-2025
- **Accepted:** 24-08-2025
- **Published:** 30-09-2025
- **IJCRM:**4(5); 2025: 220-222
- **©2025, All Rights Reserved**
- **Plagiarism Checked:** Yes
- **Peer Review Process:** Yes

How to Cite this Article

Kumari U, Narwal A. इक्कीसवीं सदी के उपन्यास: कथानक परिवर्तन का एक विश्लेषणात्मक अध्ययन. Int J Contemp Res Multidiscip. 2025;4(5): 220-222.

Access this Article Online

www.multiarticlesjournal.com

मूल शब्द: इक्कीसवीं सदी, आधुनिक उपन्यासों, महाकाव्यात्मक परिवर्तन.

प्रस्तावना

इक्कीसवीं सदी तेजी से वैज्ञानिक खोज, तकनीकी विकास और औद्योगिक प्रगति का समय है। ये बदलाव हमारे सोचने और जीने के तरीके में बड़े बदलाव ला रहे हैं। यह वैश्वीकरण का युग है। विज्ञान और प्रौद्योगिकी में सफलता, तेजी से बढ़ता सूचना प्रवाह और कंप्यूटर और मोबाइल फोन में क्रांतिकारी प्रगति ने सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक जीवन को गहराई से प्रभावित किया है। पूंजीवाद और उपभोक्ता संस्कृति मजबूत हुई है, जिसने मानवीय मूल्यों को किनारे कर दिया है। कई मायनों में, अब लोग नहीं बल्कि वस्तुएं मानव जीवन के केंद्र में हैं। आधुनिकता की खोज अक्सर मूल्यों को विकृत करती है और जीवन में भ्रम पैदा करती है। पूंजीवाद की जटिल प्रणाली ने सांस्कृतिक प्रभुत्व और विस्थापन को जन्म दिया है। सूचना और प्रौद्योगिकी में प्रगति ने दुनिया को जोड़ा है और हर देश को और अधिक जोड़ा है। इससे धन का प्रवाह बढ़ा है और विभिन्न संस्कृतियाँ एक साथ आ रही हैं। यह नया सांस्कृतिक दृश्य व्यक्तिगत जीवन को और अधिक मशीन जैसा बनाता है। धन, बाजार और

© 2025 Usha Kumari, Dr. Ankit Narwal. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND).https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

इच्छाओं पर ध्यान लोगों को आत्म-केंद्रितता की ओर धकेलता है। अंतहीन इच्छाएँ और बाजार-संचालित महत्वाकांक्षाएँ मानव मन में असुरक्षा की भावनाएँ पैदा करती हैं। परिणामस्वरूप, मानवीय करुणा लुप्त होती जा रही है। बहुत से लोग नौकरी की तलाश में गाँव छोड़कर शहरों में जाते हैं। इस कदम से न केवल व्यक्ति बल्कि उनके परिवार, गाँव और पूरे समुदाय पर असर पड़ता है।

इक्कीसवीं सदी में, प्रमुख संस्कृतियों का प्रभाव बढ़ रहा है। समुदाय, सामाजिक बंधन और साझा मूल्यों की भावना कमज़ोर होती जा रही है। परंपराएँ और सामाजिक संबंध फीके पड़ रहे हैं और लोग अपनी जड़ों से दूर होते जा रहे हैं। यह ज़्यादातर मानवीय जुड़ाव से दूर जाने का एक कदम है। धीरे-धीरे, हम और ज़्यादा अलग-थलग होते जा रहे हैं। हम ज़्यादा अकेले रहते हैं और उपभोग के ज़रिए खालीपन को भरने की कोशिश करते हैं। इससे संस्कृति का शांत प्रसार होता है। प्रसार सूक्ष्म है और वस्तुओं के आस-पास या अंदर होता है। हम इस बदलाव को महसूस नहीं कर सकते, लेकिन यह हो रहा है। यह प्रक्रिया तेज़ी से आगे बढ़ती है, फिर भी व्यापक बनी हुई है। पुराने स्वादों की जगह नए स्वाद ले रहे हैं। यह सांस्कृतिक प्रसार कई स्तरों पर होता है: विचार, विश्वास, सिस्टम, रीति-रिवाज़, शब्द, भाषाएँ, वस्तुएँ और बहुत कुछ। समय के साथ, वे हमारे लिए कम स्पष्ट होते जाते हैं। अक्सर, हम खुद ही उन्हें अनदेखा कर देते हैं। वस्तुओं का प्रसार मानवीय गतिविधि से प्रेरित है। स्वचालन और बाज़ार की माँग ने कई वस्तुओं को फैलाने में मदद की है। पारंपरिक रोटी, मिट्टी के बर्तन, लालटेन और पीतल के बर्तन जैसी चीज़ें नज़र से ओझल हो रही हैं। इसे प्राकृतिक माना जाता है, लेकिन ऐसा नहीं है। वे पूरी तरह से गायब नहीं हुए हैं। इसके बजाय, उन्हें उनके मूल स्थानों से दूर धकेल दिया गया है। ये वस्तुएं अभी भी देश में मौजूद हैं, लेकिन अब वे उस स्थान पर नहीं हैं जहाँ वे पहले थीं। उन्हें छाया में ले जाया गया है, जिससे उन्हें अब देखना मुश्किल हो गया है।

आधुनिक उपन्यास एक अध्ययन स्तोत्र

विज्ञान और नई तकनीकों ने मशीनकरण को बढ़ावा दिया है, जिससे रिश्ते तेजी से बदल रहे हैं और जटिल भी हो गए हैं। इन बदलावों के पीछे सांस्कृतिक बदलाव भी हर कदम पर दिख रहे हैं। विस्तारवादी नीतियों के नाम पर मूलनिवासी पहचान मिटाने का खतरा बड़ा हो रहा है। यह न केवल संस्कृति को खत्म करता है, बल्कि जमीन, त्योहार, गीत, खानपान और भाषा जैसी बातों को भी खतरा लग रहा है। ये बदलाव लोगों की परंपराओं और परिवारों की विरासत को भी प्रभावित करते हैं। यह विस्थापन किसी एक व्यक्ति या वस्तु तक सीमित नहीं है, बल्कि पूरी सांस्कृतिक जड़ों को हिलाता है। त्योहार, लोकगीत, भाषा जैसी सांस्कृतिक बातें धीरे-धीरे खत्म होने की ओर बढ़ रही हैं। इस सब से संस्कृति का बड़ा हिस्सा खतरे में है। शहर और कस्बों की पारंपरिक संस्कृति खत्म हो रही है, और इससे देश की सांस्कृतिक विविधता कम हो रही है।

विज्ञापन और बाजार अब पूरे गांवों तक पहुंच चुका है। यहाँ की ग्रामीण संस्कृति धीरे-धीरे उपभोक्तावादी सोच में बदल रही है। फास्ट फूड का चलन बढ़ रहा है, और तेजी से सफलता पाने की चाह भी बढ़ी है। ये बदलाव परंपरागत मूल्यों को प्रभावित कर रहे हैं। इसी कारण से गांवों में 'रतन' जैसे युवा नए आदर्शों का अनुकरण कर रहे हैं। फिल्मी हीरो और उद्योगपतियों जैसी शख्सियतें उनके मन में जगह बना रही हैं। 'द टेन-ईयर बम्बलबी' में 'रतन' का किरदार इस नई पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करता है। यह गांवों में देखा जा सकता है। मनोचिकित्सक डॉ. 'पंडित' इस नए सांस्कृतिक दौर को समझते हैं और रतन जैसे युवाओं की स्थिति का सही आकलन करते हैं। रतन अपनी पीढ़ी का नक्शा है—उसे धैर्य नहीं रहता। वह फास्ट फूड से लेकर तुरंत सफलता की चाह रखता है। वह इंतजार नहीं कर सकता। वह सीधे ऊपर पहुंचना चाहता है। उसकी ख्वाहिश है कि वह अंबानी या आमिर जैसे उद्योगपतियों की तरह बने। डॉ. पारे बाज़ार के इस प्रभाव को जानते हैं। उनके अनुसार, इन प्रभावों से बचना मुश्किल है। उपभोक्तावादी संस्कृति का इतना असर है कि इसका फैलाव बहुत तेज है। इसीलिए वे कहते हैं, "बाज़ार अब तेजी से प्रतिस्पर्धी हो रहा है। इन युवाओं को बचाना मुश्किल है। बाजार उनके ऊपर असर डाल रहा है।" यह खौफनाक नजरिया, उपभोक्तावाद और बाजार की ताकत उनके मन में चिंता पैदा कर रही है। विज्ञापन की नई दुनिया इन युवा दिलों को आकर्षित कर, उन्हें भटकाती है। यह उन्हें महंगे सपने देखाने और अपने वश में करने का आसान तरीका है। इससे पूरे बाजार में अराजकता बढ़ती जा रही है।

व्यक्ति समाज का जरूरी हिस्सा है, लेकिन उसे अपने समाज में कई संघर्षों, परंपराओं और रीति-रिवाजों का सामना करना पड़ता है। आदमी इन संघर्षों का विरोध करें, तो भी उसे कई परेशानियों का सामना करना पड़ता है। अगर विरोध असफल हो जाए, तो यह मानसिक तनाव बढ़ा देता है। आजादी के बाद के भीतर के संघर्षों ने घर और बाजार, खुद और दुनिया के बीच फूट डाल दी है, जिससे मनुष्य कमजोर हो गया है। उपभोक्ता संस्कृति और प्रतिस्पर्धा में फंसे हुए लोग अपनी पहचान और निजी रिश्तों को पीछे छोड़ते चले जा रहे हैं। 21वीं सदी की भागदौड़ भरी जिंदगी के तनाव और परेशानी हिंदी के नए उपन्यासों में साफ दिखते हैं। ज्ञान प्रकाश विवेक के उपन्यास "आखेट" में मुख्य पात्र चेतन मानसिक दबाव में घिरे हुए हैं। घर में पैसे की किल्लत के कारण, चेतन सोचता रहता है कि कब उसके पास नौकरी आएगी और वह घर के बोझ को कम कर सकेगा। जब उसे नौकरी मिल भी जाती है, तो भी वह तनाव में रहता है। उसे यह समझना पड़ता है कि वह अपने ऑफिस के कठिन माहौल से कब तालमेल बिठाएगा। चेतन वह व्यक्ति है, जिसे अंबाला छावनी बीमा कंपनी में काम करने वाले अधीनस्थ और खासकर शिखर जैसी शीर्ष अधिकारी, एक बाहरी व्यक्ति के तौर पर देखते हैं। उसे तरह-तरह के उत्पीड़नों का सामना करना पड़ता है, ताकि वह नौकरी छोड़ दे। लेकिन, चेतन चुपचाप इन समस्याओं को सहता है। वह उनका सामना नहीं करता बल्कि अपने बलिदान से इन कठिनाइयों का सामना करता है। इससे उसके मन में तनाव बना रहता है। इस मानसिक तनाव से उसकी कमजोरियाँ उभरने लगती हैं। कई बार चेतन को यह तय करना मुश्किल हो जाता है कि वह नौकरी छोड़े या सहता रहे। यह ही उसे बार-बार तनाव में रखता है। अंत में, वह कोई भी फैसला नहीं ले पाता। चेतन का सामाजिक जीवन भी संघर्षमय है। वह मेहनत कर रहा है, लेकिन समाज में अपने साथ हो रहे अन्याय को भांप रहा है। वह टूट चुका मनुष्य बन जाता है। ऊँचे पद वाले लोग कमजोर और सहायक लोगों का शोषण करते रहते हैं। लेखक ने वर्तमान के जीवन में आई बहुत सारी बुराइयों, समस्याओं और नैतिक गिरावट का चित्रण किया है। यह हर तरह की पारिवारिक, सामाजिक और मनोवैज्ञानिक

© 2025 Usha Kumari, Dr. Ankit Narwal. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND).https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

स्थिति को दिखाता है। चेतन के जरिए आज के इंसान की कमजोरी और असहायता को पेश करता है।

समाज को सुधारने और नई दिशा देने में इन प्रयासों का अहम योगदान है। साम्प्रदायिकता पर चर्चा और उससे जुड़े उपन्यासों की कहानी बहुत महत्वपूर्ण है। यह समझना जरूरी है कि साम्प्रदायिकता क्या है और हिन्दी उपन्यासों में इसकी तस्वीर कैसी पेश की गई है। क्या यह वही है जो हमारे इतिहासकार हमें बताते हैं, या फिर वो तस्वीर है जिसे राजनेता अपने फायदे के लिए दिखाते हैं? इतिहास के समय जो साम्प्रदायिकता का नजरिया था, वह आज और भी खतरनाक हो गया है। इस सवाल पर अनेक विचारक, समाजशास्त्री और लेखक अपने-अपने मत रखते हैं। इस चर्चा में शोध की सीमाओं का ध्यान रखते हुए, नैतिक और राजनीतिक नजरिए से जरूरी बातों पर ध्यान केंद्रित किया गया है। हिन्दी उपन्यासों के माध्यम से यहाँ साम्प्रदायिकता का सच समझाया गया है।

भारत में सांप्रदायिकता पर चर्चा करने के लिए इसकी अनूठी पृष्ठभूमि को समझना ज़रूरी है। भारत कई धर्मों, जातियों और संस्कृतियों का देश है। यशपाल और ग्रोवर जैसे इतिहासकार इस बात पर ज़ोर देते हैं कि सांप्रदायिकता सिर्फ़ धार्मिक या राजनीतिक मुद्दा नहीं है। इसमें हिंदू-मुस्लिम संघर्षों से कहीं ज़्यादा जटिल कहानी शामिल है। ब्रिटिश शासन के दौरान, हिंदू, मुस्लिम और अंग्रेजों के बीच एक त्रिकोणीय रिश्ता बना। अंग्रेजों ने मुख्य रूप से इस त्रिकोण का समर्थन किया। उन्होंने हिंदू या मुस्लिम का पक्ष नहीं लिया, बल्कि फूट डालो और राज करो की नीति अपनाई। इस रणनीति के कारण भारत और पाकिस्तान का निर्माण हुआ। विभाजन सिर्फ़ सीमाओं का पुनर्निर्धारण नहीं था; यह दोनों समुदायों के ख़िलाफ़ एक गहरी साज़िश थी। इसने ऐसे घाव दिए जो आज़ादी से पहले दिखाई नहीं देते थे। आज भी, इस विभाजन के प्रभाव दर्द और तनाव का कारण बनते हैं।

संप्रदायिकता पर विचार करते समय, धर्म का चर्चा जरूरी है। अक्सर, धर्म ही समुदायों को अलग बनाता है। भारत कई धर्मों, जातियों और संस्कृतियों का देश रहा है। इतिहासकार यशपाल और ग्रोवर मानते हैं कि सांप्रदायिकता को सिर्फ धार्मिक मुद्दा नहीं, बल्कि राजनीतिक भी माना जाना चाहिए। भारत में सांप्रदायिकता को केवल हिंदू-मुस्लिम संघर्ष की नजर से नहीं देखा जाना चाहिए। यह अधिकतर धर्म से नहीं, बल्कि राजनीति से जुड़ी हुई है। अंग्रेजों ने हिंदू और मुस्लिम समुदायों के बीच रणनीतिक विभाजन रचा, जिससे एक त्रिकोण बना। वे न तो दोनों का समर्थन करते थे और न ही दोनों का विरोध, बल्कि वे ब्रिटिश सत्ता के साथी थे। यह दिखाता है कि भारत में पहली बार, बाहरी और साम्राज्यवादी सोच वाले समुदाय ने दो समुदायों के बीच नफरत रची। इस कारण भारत और पाकिस्तान का विभाजन हुआ। यह सिर्फ अलगाव नहीं था, बल्कि दो समुदायों के बीच गहरी खाई खड़ी कर गया। पहले के मुकाबले बड़ी और बढ़ती जा रही। इस विभाजन ने इतनी नफरत फैलाई कि आज भी दोनों के बीच मिस्स समझ और भरोसा नहीं है। इतिहासकार मानते हैं कि यह विभाजन शुरू हुआ मुस्लिम लीग से। राजमोहन गांधी जैसे लोगों ने लंबे समय से भेदभाव और श्रेष्ठता के विचार देखे हैं।

निष्कर्ष

21वीं सदी के हिंदी उपन्यासों में महिलाओं और दलित पहचान का उदय एक बड़ी घटना है। इस विकास ने उपन्यासों में इस्तेमाल किए गए अनुभव और भाषा दोनों का विस्तार किया है। पहले, नए लेखन की बाढ़ सी आ गई थी, जो अक्सर सिर्फ़ व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर पहचान का दावा करते थे। इसके कारण कई रचनाएँ ऐसी हुईं जो वास्तविक अंतर्दृष्टि से ज़्यादा आवेग से प्रेरित थीं। पिछले एक-दो दशक में यह लहर धीमी पड़ गई है। फिर भी, कई मज़बूत, रचनात्मक रचनाएँ सामने आई हैं, ख़ास तौर पर महिलाओं द्वारा, जैसे अनामिका की "दूब-धन" और कात्यायनी की "सात भाइयों में चम्पा"। दलित लेखकों ने भी सशक्त आत्मकथात्मक कहानियाँ लिखीं, जैसे तुलसी राम की "मुर्दहिया" और धर्मवीर की "मैं, मेरी पत्नी और भेड़िया", जिन पर काफ़ी चर्चा हुई। इन वर्षों में, हिंदी साहित्य का दायरा और गतिविधि काफ़ी बढ़ गई है। यह अब पहले से ज़्यादा समावेशी है। आवाज़ों और शैलियों की सीमा इतनी व्यापक है कि इसे आसानी से वर्गीकृत नहीं किया जा सकता। कुछ स्पष्ट बदलाव और नई दिशाएँ ध्यान देने योग्य हैं। ये परिवर्तन आज हिंदी लेखन में एक नई ऊर्जा और अलग राह का संकेत देते हैं।

सन्दर्भ सूची

1. राय जी. प्रेमचंद की उपन्यास कला. उपन्यास की पहचान, गोदान: नया परिप्रेक्ष्य. पटना: अनुपम प्रकाशन; 2004. p. 225.
2. सिंह पु. वैश्वीकरण के संदर्भ में उपन्यास दृष्टि. भूमण्डलीकरण और हिन्दी उपन्यास. दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन; 2012. p. 49.
3. राय जी. विमर्श के नये क्षितिज. उपन्यास का इतिहास. दिल्ली: राजकमल प्रकाशन; 2005. p. 257.
4. श्रीवास्तव प. उपन्यास में नाटक. हंस. दिल्ली: दरियागंज. राजेन्द्र यादव (सं.). जुलाई 1994. p. 77.
5. अग्रवाल र. दीवार में एक खिड़की रहती थी. खिड़की नहीं होगी तो दीवारें कैद न कर लेंगी? इतिवृत्त की संरचना और संरूप (पन्द्रह वर्षों के प्रतिमानक उपन्यास). पंचकूला (हरियाणा): आधार प्रकाशन; 2006. p. 128.
6. राय जी. समकालीन परिदृश्य. उपन्यास का इतिहास. दिल्ली: राजकमल प्रकाशन; 2009. p. 397.
7. वर्मा अ. विसर्जन अर्थात् विनाश का विकल्प. नया ज्ञानोदय. दिल्ली: रवीन्द्र कालिया (सं.); मार्च 2010. p. 67.

Creative Commons (CC) License

This article is an open-access article distributed under the terms and conditions of the Creative Commons Attribution (CC BY 4.0) license. This license permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original author and source are credited.

© 2025 Usha Kumari, Dr. Ankit Narwal. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND).https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/